ISSN No. : 2394-0344 REMARKING : VOL-1 * ISSUE-9*February-2015

आलोचकों की दृष्टि में आचार्य रामचंद्र शुक्ल

विवेकानन्द उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
डॉ. हरि सिंह गार विश्वविद्यालय,
सागर, मध्य प्रदेश

सारांश

हिंदी साहित्य और भाषा को आजादी के आंदोलन और आजादी के बाद के भारत में जो प्रमुखता प्राप्त हुई उसका एक कारण हिंदी आलोचना की व्यवस्थित और मजबूत परंपरा को ही जाता है। अन्यथा साहित्य तो अन्य भारतीय भाषाओं में भी खूब लिखा गया है। लेकिन आलोचना को जो उत्कर्ष हिंदी में प्राप्त हुआ वह अन्य भारतीय भाषाओं में संभव नहीं हुआ। इस दृष्टि से आचार्य रामचंद्र शुक्ल का योगदान ऐतिहासिक है।

मुख्य शब्द : हिंदी साहित्य का इतिहास, साहित्यिक, व्यावहारिक आलोचना, सैद्धांतिक रचना

प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना के साथ निबंध लेखन और अनुवाद के क्षेत्र में भी कार्य किया। उनके साहित्यिक रचना कर्म की शुरूआत भले ही कविता से हुई लेकिन आरंभ में उन्होंने महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय अनुवाद कार्य किया। कविता क्या है नामक निबंध, हिंदी साहित्य का इतिहास, सूर तुलसी जायसी पर व्यावहारिक आलोचना, रस मीमांसा जैसी सैद्धांतिक रचना और बुद्धचरित जैसा अनुवाद उनके रचना कर्म की उच्चता और गहराई तथा व्यापकता के प्रमाण हैं। आचार्य शुक्ल अपने जीवन काल में ही किंवदंती बन चुके थे। उनकी साहित्यिक स्थापनाएँ उनके जीवन काल में ही बहस के दायर में आ गई थीं। एक प्रकार से उनकी स्थापनाओं, मान्यताओं और वर्गीकरण को लेकर पक्ष– विपक्ष में खूब लिखा गया। डॉ. ओम प्रकाश सिंह ने लिखा है, "एक दौर था जब साहित्यिक दुनिया से आचार्य शुक्ल को खारिज करने की भरपूर कोशिश की गई। ऐसे ही प्रयास का एक हिस्सा था– पत्र पत्रिकाओं में दबी पड़ी उनकी असंकलित रचनाओं को प्रकाश में न आने देने की कोशिश। आचार्य शुक्ल के लेखन के एक बड़े भाग से हम लगभग सात–दशक तक अपरिचित रहे। ऐसा कम हुआ है कि किसी रचनाकार की परवर्ती रचनाओं से आगामी पीढ़ी इतनी लंबी अवधि तक अपरिचित रही हो। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की रचनाओं के साथ ऐसा हुआ है, इसके अनेक प्रमाण हैं।"[1]

शुक्लजी की आलोचना दृष्टि का स्रोत शास्त्र अर्थात केवल पुस्तकें ही नहीं थी। लोक परंपरा से भी उन्होंने काफी कुछ प्राप्त किया था। जायसी की रचनाओं की प्राप्ति के प्रसंग का उल्लेख शिवमंगल सिंह सुमन ने किया है। वे बताते हैं कि शुक्लजी को रायबरेली से अमेठी जाते एक फकीर मिला। उसके मुँह से जायसी का एक दोहा सुनकर शुक्लजी ने उससे प्रभावित होकर उससे और सुनाने को कहा और तब जाकर उन्हें पता चला कि पद्मावत लिखा तो अवधी में गया है लेकिन फारसी लिपि में है।

शुक्लजी केवल भाषा और साहित्य के ही मर्मज्ञ नहीं थे। वे इतिहास और विज्ञान लेखन ने भी गहराई से प्रभावित और परिचित थे। इसलिए साहित्य में वे तथ्यात्मक त्रुटि या असंगति को पसंद नहीं करते थे। भगवती चरण वर्मा के उपन्यास चित्रलेखा को शुक्लजी ने काशी हिंद् वि.वि. के हिंदी विभाग के पाठ्यक्रम में लगवा दिया था। और वे इसे एक समस्यामूलक उपन्यास मानते थे। पर जब भगवती चरण वर्मा उनसे मिलने पहुँचे तो उस खुद ही उस उपन्यास की ऐतिहासिकता की तारीफ इतिहासकार ईश्वरी प्रसाद के हवाले से करने लगे कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह उपन्यास गुप्तकाल पर आधारित महत्वपूर्ण रचना है। पर शुक्लजी ने उस उपन्यास के एक पात्र कुमारगिरि का उल्लेख करते हुए पूछा कि पुरी, गिरि, भारती जैसी जैसी श्रेणियों में संन्यासियों का वर्गीकरण आचार्य शंकर के द्वारा गुप्त काल के काफी बाद किया गया। उसके पहले यह नाम संन्यासियों के नाम के साथ नहीं मिलता। भगवतीचरण वर्मा के लिए यह आश्चर्य का विषय था। इसी तरह महादेवी वर्मा की एक कविता जिसमें शेफाली और हरसिंगार का जिक्र है शुक्ल जी ने उसमें भी प्रकृति के निरीक्षण का प्रश्न उठाते हुए महादेवी की चूक की ओर इशारा किया। महादेवी की कविता का वह अंश निम्नांकित है:

आज नयन आते क्यों भर भर
सकुच सजल खिलती शेफाली
मुकुल मौलश्री डाली डाली
हरसिंगार झरते हैं झर झर
आज नयन आते क्यों भर भर [2]

इस कविता पर शुक्ल जी ने महादेवी वर्मा के लिए यह टिप्पणी की, "....कह देना कि शेफाली और हरसिंगार एक ही हैं और यह भी कि दुनिया में यही तो एक फूल है जो या तो डाल पर दिखता है या धरती पर। कब टपका कोई जान नहीं पाता और जान भी ले तो झर– झर ध्वनि कैसी।"[3] वस्तुतः शुक्लजी साहित्यिक रचनाओं में प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के हिमायती थे और साहित्य में तथ्यात्मक भूल या असंगति उनकी निगाहों में अटक जाती थी। काव्य रहस्यवाद को लेकर शुक्लजी के मत की आलोचना आज भी की जाती है और उनके जीवन काल में उनके सामने ही की जाती थी। शिंवमंगल सिंह सुमन ने प्रसादजी की पुण्य तिथि की अवसर पर आयोजित कार्यक्रम की ऐसी ही एक घटना का हवाला दिया है जिसमें वक्ता शुक्लजी की रहस्यवाद संबंधी मान्यताओं का विरोध करने लगे। शुक्लजी ने उस अवसर पर जो वक्तव्य दिया वह रहस्यवाद संबंधी शुक्लजी की मान्यताओं को बहुत असरदार तरीके से स्पष्ट कर देता है। उन्होंने कहा, "मैंने न आज तक कहीं लिखा, न कहा कि भारत में रहस्यवाद नहीं था। भारत में रहस्यवाद था भावनात्मक भी और साधनात्मक भी। तंत्र और हठयोग के अंतर्गत उसका समावेश था। उपनिषदों में तो उसकी प्रतिच्छाया है ही। पर उपनिषद आदि दर्शन के ग्रंथ हैं। उस समय तो धर्म, संप्रदाय, दर्शन, आयुर्वेद आदि सभी शास्त्र पद्य में, श्लोकों में ही लिखे जाते थे। मैंने तो केवल इतना ही कहा है कि भारतीय काव्य में रहस्यवाद नहीं था। काव्य से मेरा तात्पर्य वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति आदि सर्जकों की कृतियों से था। क्या यहाँ बैठे विद्वानों में से कोई आदि कवि वाल्मीकि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक एक भी पंक्ति रहस्यवाद की दिखला सकते हैं।"[4] सुमन जी कहते हैं कि ऐसा लगा जैसे दो–ढाई घंटे के भाषणों की बलुही दीवार आँधी के एक झोंके से ही ध्वस्त हो गई।

शुक्लजी की साहित्य समझ और इतिहास दृष्टि पर सबसे खतरनाक और ध्वंसात्मक प्रहार जैनेद्र ने किया है। शुक्लजी के हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ के बारे में उनका मत है, "हिंदी साहित्य का इतिहास है और उसकी कड़ी हरिश्चंद्र से नहीं, सदियों शताब्दी दूर से मिलती चली आती है इस बात को शुक्लजी से पहले किसी ने जाना भी था तो उसका दान नहीं दिया था। शुक्लजी ने वह दृष्टि प्रस्तुत की। इतिहास और भी लिखे गये हैं, पर वे संकलन से कुछ भी अधिक हैं तो शुक्लजी की दी हुई दृष्टि पर ही आधारित हैं, ब्यौरों में फर्क हो, सामग्री के पेश करने के ढंग में कुछ अंतर हो, लीक वही है। फिर भी कहना होगा कि इतिहास उन्होंने जुटाया है, जगाया नहीं है। अर्थात् सबमिलाकर उनका इतिहास कोई संदेश नहीं देता।"[5] इसी तरह वे कहते हैं, "इतिहास शुक्लजी के आगे चित्रवत् नहीं आ सका वह उनके निकट एक फाइल के रूप में था। इस प्रकार का इतिहास भविष्य के लिए मार्ग दर्शक नहीं होता, न कोई विधायक स्फूर्ति दे सकता है। साहित्य का इतिहास संस्कृति का व्यक्त इतिहास है। क्या शुक्लजी को इसकी पहचान थी।[6] "वस्तुतः वे एक तो साहित्य के इतिहास को साहित्य की एक विधा जैसा मानते हैं। दूसरी बात यह कि वे साहित्य के इतिहास लेखन की जटिलताओं से संभवतः परिचित नहीं लगते क्योंकि जितने सरलीकृत ढंग से जैनेन्द्र ने शुक्लजी के इतिहास को खारिज किया है वह बहुत अर्थपूर्ण नहीं लगता। हो सकता कि कुछ और लोगों को भी लगता हो कि शुक्लजी ने इतिहास को सिर्फ इकट्ठा किया जगाया नहीं। लेकिन अगर शुक्लजी इतिहास न जगाया होता तो हिंदी आलोचना आज जिस वृहत् सांस्कृतिक विमर्श में तब्दील हो चुकी है, वह संभव न होता। आचार्य रामंचद्र शुक्ल केवल साहित्य का आलोचक नहीं थे बल्कि वे अशोक वाजपेयी के शब्दों में भारत के एक सार्वजनिक बुद्धिजीवी भी थे। उनकी सार्वजनिक बुद्धिजीविता का विकास और विस्तार परवर्ती हिंदी आलोचना में हुआ है। जैनेन्द्र संभवतः उन सूत्रों को पकड़ नहीं पाए।इसी तरह तुलसी दास के प्रसंग में भी वे शुक्लजी की भूल रेखांकित करने का प्रयत्न करते हैं। वे कहते हैं, "तुलसी को जो भीतर तक निपट भीगे भक्त थे, शुक्लजी ने नाना बनाव में देख दृ दिखा डाला है। उनको विद्वान माना, नीतिदाता माना, समाज सुधारक, लोक संग्रहक, लोक नेता माना। मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह कृपा आलोचक की अकृपा है।"[7]लेकिन उनकी इस आपत्ति का स्रोत कविता के बारे में उनकी समझ से है जो उनके अगले ही वाक्य में व्यक्त हुई है। वे कहते हैं, "समझदार आदमी कवि को अपनी समझदारी की नाप– काट में देखने को लाचार हो, पर कवि कर्म समझदारी का कर्म नहीं है, वह तो प्रीति के आवेग द्वारा संभव होता है।"[8]प्रीति के आवेग से कविता के जन्म का सिद्धांत किसी ठोस जमीन पर आधारित नहीं है। कविता प्रीति का व्यापार मात्र नहीं है वह एक बेहद गंभीर बौद्धिक कर्म है जिसका प्रभाव तत्काल श्रोता या पाठक पर पड़ जाता है। कविताएँ ही हैं जो मंत्र में बदल जाती हैं और सुनने वालों को अपनी अपनी चमक से भीतर तक आलाकित कर जाती हैं। यह कार्य केवल प्रीति के आवेग से ही संभव नहीं है।

उनका अगला सबसे बड़ा तर्क यह है कि शुक्लजी ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की जो आलोचना की है वह सही नहीं है। दूसरी बात यह कि वे साहित्य के आनंद वाले प्रतिमान को साहित्य के इतिहास पर भी लागू कर दते हैं।एक तो साहित्य का इतिहास कोई साहित्यिक विधा नहीं है। दूसरी बात यह कि शुक्लजी का हिंदी साहित्य का इतिहास परवर्ती लेखकों के हिंदी साहित्य के इतिहास के मुकाबले आज भी ज्यादा सरस है। तमाम जानकारियों और ज्ञान के नए अनुशासनों से संपन्न होने के बावजूद वैसा सरस साहित्य का इतिहास हिंदी में दुबारा नहीं लिखा जा सका। रही बात इतिहास जगाने की तो हिंदी में आलोचना का व्यवस्थित ढाँचा अगर शुक्लजी द्वारा न मिला होता तो हिंदी भाषा और साहित्य को आज भी जो प्रमुखता प्राप्त है वह नहीं होती क्योंकि हिंदी में रचनात्मक लेखन के साथ व्यावहारिक और सैद्धांतिक आलोचना का भी आवश्यक विकास होता रहा। अगर आलोचना कर्म पिछड़ जाता तो हिंदी की साहित्य गतिविधि आज इतनी संपन्न नहीं होती। इसके लिए हिंदी

संसार सदैव ही शुक्लजी का ऋणी रहेगा। वस्तुतः यह हमारे समकालीन विमर्श की बहुत बड़ी विसंगति है कि हम जिस चीज से असहमत होते हैं उसे प्रायः उतिहास के कूड़ेदान में डलवा देने के लिए तत्पर हो जाते हैं। आज हिंदी मे यह अक्सर सुसने को मिलता है कि हम संस्कृत काव्यशास्त्र क्यों पढ़ें? लेकिन पश्चिमी काव्यशास्त्र में अरस्तू और प्लेटो को पढ़ने में हमें कोई बौद्धिक संकट नहीं दिखाई पड़ता। ज्ञान की दुनिया में कोई चिंतन भले ही कितना ही आज अनुपयोगी दिखे पर वह अप्रासंगिक या अर्थहीन व महत्वहीननहीं होता। शुक्लजी की मान्यताएँ आज भले ही विवाद का विषय हों लेकिन हिंदी में विचार की संस्कृति निर्मित करने में उनका योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण और ज्यादा है। आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी शुक्लजी का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं, "शुक्लजी की सारी विचारणा द्विवेदी युग की व्यक्तिगत, भावात्मक और आदर्शोन्मुखी नीतिमत्ता पर स्थित है। समाजशास्त्र, संस्कृति और मनोविज्ञान की वस्तुन्मुखी मीमांसा उन्होंने नहीं की है। प्रवृत्ति– विषयक उनकी धारणा भारतीय धार्मिक धारणा की अपेक्षा पाश्चात्य अधिक है। उनका काव्य– विवेचन भी प्रबंध– कथानक और जीवन दृश्य सौंदर्य के व्यक्त रूपों का आग्रह करने के कारण सर्वांगीण और तटस्थ नहीं कहा जा सकता। नवीन युग की सामाजिक और सांस्कृतिक जटिलताओं और उनसे होकर बहने वाली काव्यधारा का आकलन हम शुक्लजी में नहीं पाते।"[9] लेकिन सवाल यह कि शुक्लजी का मूल्यांकन क्या सिर्फ इसी आधार पर करना उचित है कि उन्होंने क्या नहीं किया। यह सवाल तो उनके बाद आने वाले आलोचकों से भी पूछा जा सकता है कि वे खुद तो शुक्लजी कमियों से मुक्त तथा ज्यादा ज्ञानवान थे तो वे शुल्क जी से बेहतर तो छोड़िए उनके जैसी सरस कोई आलोचनात्मक कृति क्यों नहीं प्रस्तुत कर पाये। लेकिन आचार्य नंददुलारे वाजपेयी का यह कथन इस लिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे न केवल शुक्लजी के विद्यार्थी थे बल्कि बाद में चलकर अपने समय में हिंदी के अग्रणी आलोचक भी थे। शुक्लजी के हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथ की रचना के प्रसंग में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अवश्य ही उल्लेखनीय बात कही है। वे कहते हैं "पं. रामचंद्र शुक्ल ने जो इतिहास लिखा है, उसे पं रामचंद्र शुक्ल ही लिख सकते थे, जिन दिनों वह इतिहास लिखा गया था, उन दिनों हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए जैसे सामग्री की आवश्यकता होती है, वैसे उपलब्ध नहीं थी। थोड़े से कवि– वृत्त संग्रह अवश्य वर्तमान थे, परंतु उन्हें इतिहास नहीं कहा सकता।"[10] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने समस्या पर बिलकुल सही जगह अँगुली रखी है क्योंकि हिंदी में व्यवस्थित आलोचना का जो पहला प्रयास किया वह शुक्लजी ने किया। यद्यपि द्विवेदी जी ने शुक्लजी की साहित्य संबंधी मान्यता की ओर संकेत करते हुए कहा कि वे साहित्य को केवल शिक्षित जनता की प्रवृत्तियों के निरूपण का शास्त्र ही मानते थे। इसी कारण शुक्लजी ने संत साहित्य के प्रति बहुत सदयता नहीं दिखाई। द्विवेदीजी ने शुक्लजी के काल विभाजन के गुणों की तारीफ करते हुए लिखा है, "शुक्लजी के काल विभाग में एक बड़ा भारी गुण यह है कि वह प्रवत्तियों को स्पष्ट इंगित करते हैं, पर कभी– कभी दूसरी प्रवृत्तियाँ जो थोड़ी कम शक्तिशाली होती हैं, गौण बन जाती है।"[11] इतना ही नहीं द्विवेदी जी ने शिवमंगल सिंह सुमन के पूछने पर कि बंगला में आचार्य शुक्ल की समानता का कौन समीक्षक है तो द्विवेदी ने जवाब दिया, "सच पूछिए तो बंगाली में संप्रति शुक्लजी की ऊँचाई और गहराई का एक भी समीक्षक नहीं है।.....यद्यपि अन्य भाषाओं के साहित्य की पूर्ण जानकारी के बिना इस संबंध में कुछ कहने का मैं अधिकारी नहीं हूँ, पर जहाँ तक मैं जानता हूँ भारत की किसी भी भाषा मे आचार्य शुक्ल सरीखा सम्यक, समालोचक सुलभ नहीं है।"[12] जो लोग द्विवेदीजी को शुकलजी के विरोध में खड़ा करने की कोशिश करते हैं उनके लिए उपर्युक्त उद्धरण काफी होगा।

आचार्य नामवर सिंह ने शुक्लजी के लेखन के आलोचक विवेक, प्रज्ञा, रचनात्मकता और नैतिकता की चर्चा की है। साथ ही दिखाया है कि शुक्लजी की आलोचना का वस्तुगत आधार काव्य भाषा है। वे कहते हैं, "रीति काव्य की समीक्षा के प्रसंग में आचार्य शुक्ल की मर्मग्राहिणी प्रज्ञा का एक और महत्वपूर्ण पक्ष सामने आता है और वह है काव्य भाषा संबंधी चिंता।"[13]लेकिन शुक्लजी की काव्यभाषा संबंधी चिंता को अन्य आलोचकों की काव्यभाषा संबंधी चिंता से अलग कुछ इस प्रकार है। आचार्य नामवर सिंह के शब्दों में, "अधिकांश कवियों की समीक्षा उनकी भाषा से या तो आरंभ होती है या समाप्त। शायद ही कोई महत्वपूर्ण कवि हो जिसकी भाषा पर शुक्लजी ने टिप्पणी न की हो। तारतमिक तुलना इस भाषा विवेचन की भी विशेषता है।"[14] शुक्ल जी के शब्दों में रीतिकाल के कवियों की काव्यभाषा की विशेषताएँ कुछ इस प्रकार हैं। जैसे– बड़े कवियों में देव का विशेष गौरव का स्थान है लेकिन कहीं कहीं शब्द व्यय बहुत अधिक और अर्थ अल्प, भूषण की भाषा में ओज है लेकिन अव्यवस्थित है।बिहारी की भाषा चलती होने पर साहित्यिक है।वाक्य रचना व्यवस्थित है। शुक्लजी ने तुलसी दास की तरह पद्माकर की भाषा में अनेकरूपता की चर्चा की है। रहीम की कविता की लोकप्रियता का वस्तुगत आधर यह है कि उन्हें जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव था। इसी तरह घनानंद की आलोचना के प्रसंग में भी शुक्लजी उनकी भाषा की तारीफ करते हुए कहते हैं कि भाषा का ऐसा बेधड़क प्रयोग करने वाला हिंदी के पुराने कवियों में दूसरा नहीं हुआ।

आचार्य नामवर सिंह ने शुक्लजी के आलोचनात्मक ग्रंथों की सबसे बड़ी विशेषता बताते हुए तन्मतया का प्रश्न उठाया और कहा है, "तन्मयता केवल किसी महान काव्य या उपन्यास का ही गुण नहीं है बल्कि एक कालजयी आलोचनात्मक कृति भी उसी प्रकार तन्मय करने की क्षमता रखती है। यदि इस कथन की सच्चाई में किसी को संदेह हो तो वह आचार्य शुक्ल की श्रेष्ठ समालोचना– कृतियों को पढ़ ले।"[15]

रामविलास जी ने शुक्लजी द्वारा रहस्यवाद के विरोध के कारणों की वस्तुगत वैचारिक पहचान स्पष्ट करने की कोशिश की है। वे कहते हैं, "यद्यपि शुक्लजी गोचर जगत् को ब्रह्म की व्यक्त सत्ता मानते हैं, फिर भी काव्य के लिए वह अगोचर ब्रह्म की जरा भी आवश्यकता नहीं समझते। यही वह वस्तुवाद की भूमि है जहाँ से वे रहस्यवाद या भाववाद के झूठे दावों का खंडन करते हैं।"[16] आचार्य शिव कुमार मिश्र का लेख भक्तिकाव्य और आचार्य रामचंद्र शुक्ल शुक्लजी के दार्शनिक चिंतन तथा समकालीन चिंताओं

को रेखांकित करता है जहाँ शुक्लजी की आलाचना दृष्टि और विश्वदृष्टि निर्मित हुई। वे कहते हैं,"जाहिरा तौर पर शुक्लजी की जीवन दृष्टि या विश्व दृष्टि मूलतः भाववादी या प्रत्ययवादी है। वे जगत को अव्यक्त या ब्रह्म का व्यक्त रूप मानते हैं, ब्रह्म की आनंद कला की बात करते हैं, अवतारवाद पर उनकी आस्था है, भक्ति भले ही उसका आलंबन ईश्वर का व्यक्त रूप हो, उनके लिए धर्म की रसात्मक अनुभूति और अभिव्यक्ति है। किंतु शुक्लजी यहीं आकर ठहर नहीं जाते अथवा यही उनकी विश्वदृष्टि का निर्णायक बिंदु नहीं है। मूलतः प्रत्ययवादी होते हुए भी व्यवहारतः वे वस्तुवाद के निकट खड़े दिखायी देते हैं अर्थात् एक बार जगत को अव्यक्त का रूप बता चुकने के पश्चात् वे अपने सारे चिंतन को इस व्यक्त जगत तक ही सीमित कर देते हैं।"[17]विश्वनाथ त्रिपाठी ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा शीर्षक अपने लेख में शुक्लजी की भाषा संबंधी मान्यताओं ही नहीं बल्कि उसके स्रोतों को भी स्पष्ट किया है और उनकी आलोचना में स्पष्टता और गहराई का कारण वे शुक्लजी के भाषा संबंधी ज्ञान को ही मानते हैं। वे कहते हैं, "हिंदी के श्रेठ आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आलोक बनने की भारी तैयारी की थी। वे हिंदी भाषा की प्रकृति के जानकार भाषाविद् थे। भारतीय काव्यशास्त्र के प्राचीन आचार्य भाषाविद् होते थे। यह आकस्मिक या संयोग नहीं बल्कि आवश्यक था।.....हिंदी भाषा के लगभग एक लाख शब्दों का अर्थ लिखने का अर्थ क्या होता है। उन शब्दों का ठीक–ठीक अर्थ, संदर्भ, प्रयोग, व्यवहार– विधि जानना और बताना। इन्हीं शब्दों से तो साहित्य बनता है।.....शुक्लजी की भाषा जो इतनी तथ्य निरूपिणी है, इसका एक महत्वपूर्ण कारण उनका कोशकार होना है। इस दिशा में उनकी तुलना डा. रामविलास शर्मा ने डॉ. जानसन से की है।"[18] शुक्लजी की दृष्टि निर्मित करने में हैकल की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक रिडिल आफ यूनीवर्स का विशेष हाथ माना जाता है। उन्होंने इस पुस्तक विश्वप्रपंच नाम से न केवल अनुवाद किया बल्कि उसकी एक लंबी भूमिका भी लिखी। हैकल ने डार्विन के विकासवाद की मदद से धार्मिक पाखंड, रूढ़िवाद और आतंकवाद का जोरदार खंडन किया था। हिंदी के आधुनिक काल का आरंभिक दौर एक तरह से अनुवाद काल कहा जा सकता है। प्रो. मैनेजर पांडेय ने अनुवाद को द्वंद्वात्मक स्थिति के बारे में लिखा है। "भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना और प्रसार के साथ ही उपनिवेशवाद ने भारतीयों की चित विजय या दिमागी गुलामी का जो अभियान आरंभ किया था उसका पहला कदम था भारतीय साहित्य का अनुवाद करना।.....वे अनुवाद के माध्यम से भारत के आत्मबोध और जगत बोध को, उसकी अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों और रचनाओं को अपनी दृष्टि, भावना तथा समझ के अनुकूल बना रहे थे।.....भारतीय नवजागरण के निर्माताओं में से अनेक ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अनुवाद संबंधी अभियान के अभिप्राय को समझते हुए इसके उत्तर की खोज की दिशा में प्रयत्न करना शुरू किया और भारतीय समाज को जगाने के लिए स्वयं अनुवाद का काम आरंभ किया।"[19] आचार्य रामचंद्र शुक्ल का अनुवाद कार्य भी इसी कड़ी का हिस्सा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बारे में आलोचकों के विचार उनकी अपनी पूर्व मान्यताओं और रुचि पर आधारित हैं। फिर भी सभी शुक्लजी के रचनात्मक अवदान की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं और साथ ही उनकी सीमाओं की ओर भी संकेत करते हैं। नामवर सिंह ने शुक्लजी के रीतिकाल संबंधी लेखन के माध्यम से शुक्लजी की रचनाशीलता और आलोचना का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वह बड़ा ही दिलचस्प और ज्ञानपूर्ण है।

सन्दर्भ सूची

1. ओम प्रकाश सिंह, भूमिका आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ (V)
2. महादेवी वर्मा, आचार्य रामचंद्र शक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा उद्धृत, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 61
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, शिवमंगल सिंह सुमान द्वारा उद्धृत, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि,(सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 61
4. वही पृ. 67
5. जैनेन्द्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 88–89
6. वही पृ 89
7. वही पृ 90
8. वही पृ 90
9. आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 124
10. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 125
11. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 129
12. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, शिव मंगल सिंह सुमन द्वारा उद्धृत, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 69
13. नामवर सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 229
14. नामवर सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 229
15. नामवर सिंह, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 234
16. राम विलास शर्मा आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 197
17. शिव कुमार मिश्र, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 229
18. विश्वनाथ त्रिपाठी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 274
19. प्रो. मैनेजर पांडेय, आचार्य रामचंद्र शुक्ल वैचारिक परिभूमि, (सं– ओमप्रकाश सिंह) प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, 2012 पृ 229